निर्गुण काव्यधारा (संतकाव्य) की विशेषताएँ / प्रवृत्तियाँ

भक्तिकाल के साहित्य में निर्गुणिय शाखा का अपना अनूठा स्थान है। इसके साहित्य की प्रधान प्रवृत्तियाँ देखना आवश्यक है । अतः संक्षिप्त में संत साहित्य की प्रमुख प्रवृत्तियाँ निम्नलिखित दी जा सकती हैं

१. निर्गुण की उपासना (निर्गुण ईश्वर में विश्वास) - सभी संत कवि निर्गुण ईश्वर में विश्वास रखते हैं । अर्थात् वे ईश्वर के सगुण रूप का विरोध करते हैं । जैसे कबीर ने यहाँ किया है

"राम नाम तिहुं लोक बखाना,
राम नाम का मरम है आना ।"

यहाँ कबीरदास जी ने सच्चे राम को पहचानने की बात कहकर उसकी महत्ता को बताया है । सच्चा ईश्वर समूची जातियों के लिये अविगत होता है। ऐसे अविगत की गति को जानना बड़ा कठिन कार्य है । इसलिए वे ऐसे निर्गुण की उपासना करते हैं । निर्गुण राम के संबंध में कवि का मत है-

"निर्गुण राम जपहु रे भाई,
अविगत की गति लखी न जाई ।"

यहाँ निर्गुण-निराकार, एकेश्वर, निर्गुण-सगुण से परे ईश्वर की भक्ति करने के लिये कहा गया है, क्योंकि उस ईश्वर (राम) की गति दिखाई नहीं देती है । ऐसे परमात्मा का स्थान चारों ओर है । अर्थात् भगवान कण-कण में है, किन्तु उसे हम भूलकर व्यर्थ में इधर उधर भटकते हैं । जबकि वह अपने घट में निवास करता है । इसे न जानकर हम वन में हिरण के जैसे भटकते हैं । यद्यपि कस्तूरी, मृग की नाभि में ही रहती है । गुरुनानक के शब्दों में

"काहे रे वन खोजन जाई ।
सर्व निवासी सदा अलोपा तोही संग समाई ।।"[८]

यहाँ सगुणोपासक, जो दरदर भटकते हैं, उन पर कवि ने करारा व्यंग्य किया है ।

२. गुरु की महत्ता (सद्गुरु का महत्व) - भक्तिकाल के संत-साधक कवियों ने गुरु को गोविन्द से भी अधिक महत्व दिया है । उन्होंने सगुण ईश्वर से गुरु को श्रेष्ठ माना है. ऐसा गुरु जिस पर कवि न्योछावर होकर यह कह उठता है कि -

"गुरु गोविन्द दोऊ खड़े, काके लागूँ पाय ।
बलिहारी गुरु आपने, जिन गोविन्द दियो बताय ।।"

गुरु द्वारा ही कबीरदास जी को निर्गुण ब्रह्म की जानकारी मिलती है। अतः वे गोविन्द से अधिक सद्गुरु को महत्व देते हैं । दूसरी ओर कबीरदास जी ने सतगुरु की महिमा का वर्णन करते हुए यह कहा है कि-

---

८. हिन्दी साहित्य और उसकी प्रमुख प्रवृत्तियाँ गोविन्दराम शर्मा, १९६१ पृ. ६६ ।

"सतगुरु की महिमा अनंत, अनंत किया उपगार ।
लोचन अनंत उघाडिया, अनंत दिखावण हार ।।"

ईश्वर के अनंत पथ को दिखाने का कार्य गुरु ही करता है । यह इस उक्त दोहे में (यमक अलंकार) कवि ने प्रकट किया है । इसी प्रकार गुरु की महिमा का वर्णन रैदास, नानकादि ने भी किया है ।

३. अवतारवाद (बहुदेववाद) का विरोध - निर्गुण धारा के कवियों द्वारा अवतारवाद का विरोध हुआ है, क्योंकि वे बहुदेववादी नहीं थे । इसका यह अर्थ है कि वे एकेश्वरवादी थे। एकेश्वरवाद की स्थापना उनके द्वारा हुई है । उस समय हिन्दू मुसलमानों में द्वेष की अग्नि भड़क उठी थी, उसे शांत करने के लिये इन कवियों ने एक ईश्वर का संदेश सुनाया । कबीरदास जी ने ब्रह्मा-विष्णु-महेश की निंदा कर परमब्रह्म को महत्व दिया है । अर्थात् एक ईश्वर को मानकर अवतारों का विरोध किया है -

'अक्षय पुरुष इक पेड़ है, निरंजन वाकी डार ।
त्रिदेवा शाखा भये, पात भये संसार ।।'

इस प्रकार अन्य संतों द्वारा भी अवतारवाद का विरोध हुआ है, जिनका वर्णन उनके काव्यों में मिलता है ।

४. रूढ़ियों और आडंबरों का खंडन - संत शाखा के साहित्य की यह विशेषता है कि इसमें सामाजिक कुप्रथाओं पर प्रहार किया गया है । समाज में फैली बुराइयों को दूर करने का इन्होंने प्रयास किया है । आडंबरों की खिल्ली उड़ाकर उसे भगाने का प्रयत्न किया है । स्वांग तथा कुरीतियों की इनके द्वारा कटु आलोचना हुई है । आडंबरों में तिलक लगाना, माला फेरना, व्रत-रोजा रखना आदि पर प्रहार करते हुये उसे न अपनाने के लिये संतों ने कहा है -

'माला फेरत जुग गया, गया न मन का फेर ।
कर का मनका डार दे, मनका-मनका फेर ।।'

केवल दिखावे के लिये माला फेरने वालों के प्रति कबीर ने व्यंग्य किया है । व्रत-रोजा रखने वालों की भर्त्सना करते हुए भी उस प्रवृत्ति का खंडन इस प्रकार किया है -

'दिन में रोजा रहत हैं, रात हनत हैं गाय ।
यह तो खून वह वंदगी, कैसे खुशी खुदाय ।।'

संत कवियों ने एक प्रकार से कुप्रवृत्तियों का विरोध करते हुये समाज को सुधारने का प्रयत्न किया है । मूर्तिपूजा का विरोध करते हुये कबीर ने उचित ही कहा है-

'पत्थर पूजे हरि मिले, तो मैं पूजूं पहार ।
ताते यह चक्की भली, पीस खाये संसार ।।'

समय न गँवाने के लिये कहकर मस्जिद में नमाज पढ़ने की प्रथा का कबीर ने इस प्रकार वर्णन किया है-

'कांकर पाथर जोरि कै, मस्जिद लई बनाय ।
ता चढ़ि मुल्ला बाँग दे, क्या बहिरा हुआ खुदाय ।।'

इस प्रकार अन्य कवियों का भी ऐसा ही प्रयास रहा है ।

५. **रहस्यवाद का दर्शन** - निर्गुण शाखा के कवियों ने रहस्यवाद को महत्व दिया है । यह रहस्यवाद भारतीय है, फिर भी इस पर सूफियों का प्रभाव है । इस वाद में आत्मा को स्त्रीरूप (पत्नी) मानकर परमात्मा को पति का रूप माना गया है । कबीरदास जी के अनेक दोहों पदों में इसका वर्णन आता है । जैसे

'दुलहिनी गावहु मंगलाचार ।

हम घर आये हो राजाराम भरतार ।।'

'लिखा-लिखी की है नहीं, देखा देखी बात ।

दुलहा-दुलहिन मिलि गये, फीकी परी बरात ।।'

DEGLOOR COLLEGE, DEGLOOR
56086
SENIOR COLLEGE LIBRARY

प्रणयानुभूति के साथ विरहानुभूति का भी दर्शन इनमें होता है

'आंखड़ियाँ झाँई पड़ी, पंथ निहारि निहारि ।

जीभड़ियाँ छाला पड़या, राम पुकारि-पुकारि ।।'

परमब्रह्म के दर्शन के लिये यहाँ मानो कवि तड़प उठा है । यही उसकी विरहानुभूति है । इस समय के रहस्यवाद पर अद्वैतवाद का प्रभाव है । अर्थात् भगवान दो नहीं एक है, और इसीलिए कबीर को यहाँ वहाँ उस एक का दर्शन होता है -

'जल में कुंभ कुंभ में जल है, बाहर भीतर पानी ।

फूटा कुंभ जल जल हि समाना, यह तत कह्यौ गियानी ।।'

आत्मा-परमात्मा को लेकर कबीर ने उक्त दोहे में समझाने का प्रयत्न किया है । ऐसा यह कवि अपने भगवान को खोजते-खोजते स्वयं तद्रूप हो गया है -

'लाली मेरे लाल की, जित देखूँ तित लाल ।

लाली देखन मैं गयी, मैं भी हो गयी लाल ।।'

यहाँ 'लाली' यह परम ईश्वर के लिये प्रयुक्त शब्द है । उसे ढूँढ़ते ढूँढ़ते वह भी लाल हो जाती है ।

६. **जाति-पांति (वर्णाश्रम व्यवस्था) के भेदभावों का घोर विरोध** - भक्तिकाल में जाति पांति का विरोध करने का कार्य निर्गुण शाखा के कवियों ने किया है । वे वर्ण व्यवस्था का समय-समय पर विरोध करते आये हैं और काव्य के माध्यम से उसे जनसम्मुख रखने का प्रयास किया है। धार्मिक क्षेत्र में ऊंच-नीच, छुआ-छूत आदि भेदभावों को मिटाने की कोशिश की है । वे मानते हैं कि सब मनुष्य बराबर हैं । भक्ति के क्षेत्र में भगवान जाति के नहीं भाव के भूखे होते हैं । उसके लिये न कोई छोटा है और न कोई बड़ा है । इसीलिए जाति-पांति के भेद को दूर करना आवश्यक मानकर यह कहा गया है

''जाति-पांति पूछै नहिं कोई, हरि को भजै सो हरि का होई ।''

ब्राह्मण-शूद्र, हिन्दू मुसलमान के बीच की दीवार तोड़ने की चेष्टा कबीर आदि ने की है। अतः जाति न पूछकर ज्ञान को महत्व देना चाहिये - यथा

"जाति न पूछो साधु की, पूछ लीजिये ज्ञान ।
मोल करो तलवार का, पड़ा रहेन दो म्यान ।।"

कबीर जैसे अनेक कवियों ने भेद-भाव को नष्ट करने का प्रयास काव्य के माध्यम से किया है ।

७. वैयक्तिक साधना (हठयोग) का महत्व- ज्ञानमार्गी तथा प्रेममार्गी शाखा के कवियों ने वैयक्तिक साधना को महत्व दिया है । इन संत-कवियों ने वैयक्तिक साधना के माध्यम से आत्मशुद्धि की ओर तथा आचरण की पवित्रता की ओर ध्यान दिया है । कवियों ने वैयक्तिक साधना के साथ-साथ समाज परिष्कार की भावना को लेकर काव्य रचना की है -

"साईं इतना दीजिए, जामें कुटुम्ब समाय ।
मैं भी भूखा ना रहूँ, साधु न भूखा जाय ।।"

कबीरदास जी ने वैयक्तिकता के साथ मानवतावाद का गुण अपनाया है । वे व्यवहार में उदार दिखाई देते हैं । ऐसे ये कवि-संत (साधक) पहले थे, बाद में कवि । इन्होंने स्वयं के साथ-साथ औरों का भी भला चाहा है ।

हठयोग में अंगों, श्वास व मन को एकाग्र कर परमात्मा के दिव्य स्वरूप का मनन करते हुये, आत्मा समाधिस्थ हो, ईश्वर से मिलने की प्रवृत्ति को महत्व दिया गया है । अर्थात् इस योग में बलपूर्वक ब्रह्म से मिल जाने की बात होती है । दूसरे शब्दों में यह कहना उचित होगा कि ज्ञानमार्गी एवं प्रेममार्गी शाखा के कवियों ने वैयक्तिक साधना में हठयोग का भी प्रयोग किया है ।

८. प्रतीकों तथा उलट-बासियों का प्रयोग - निर्गुण धारा के दोनों शाखाओं के संत-कवियों ने इस प्रवृत्ति का अवलंब लिया था । इनके साहित्य में अनेक असाधारण विषय थे, जो जनता से अपिरिचित थे । लौकिक के साथ अलौकिक के काल्पनिक एवं यथार्थ अनुभूतियों को व्यक्त करने के लिये इन्होंने प्रतीकों का आश्रय लिया है । इनके दार्शनिक विचारों में भी प्रतीकों का प्रयोग है, जिसे तत्कालीन पाठक आदि जान सकें । प्रतीकों के द्वारा अव्यक्त को व्यक्त करने और अरूप को रूप देने में सफलता मिली है । आत्मा-परमात्मा के संबंध के इनके प्रतीक सरस तथा हृदयग्राही हैं । निम्न कुछ उदाहरण अवलोकनार्थ हैं -

हंस-आत्मा, भंवरा-जीव, कुंभ-शरीर, माली-काल चकई-विरहिनी की आत्मा आदि ।

उलटवांसी में स्वाभाविक व्यापारों के विपरीत कार्य की कल्पना की जाती है । उलटा अर्थ और द्विअर्थी शब्दों के प्रयोग इसकी विशेषताएं होती हैं - यथा

'बरसे कंबल भीगे पानी ।'
'पहलै पूत पीछे भई माई,
चेला के गुरु लागै पाई ।।
जल की मछली तरवर ब्याई,
पकड़ि बिलाई मुरगे खाई ।।'

६. सत्संग, भजन तथा नामस्मरण - सत्संग, भजन तथा नामस्मरण के प्रति सभी कवियों ने कुछ न कुछ कहा है । सत्संग लोकसंग्रह की कला है । एक-दूसरे से मिलकर तार्किक चर्चा की जाती है । नामस्मरण यह मन ही मन में होना चाहिये । कबीर ने इसे ठीक ही कहा है

'सहजो सुमिरन कीजियै, हिरदै माहिं छिपाई ।
होठ-होठ सूंना हिलै, सकै न कोई पाई ।।'

बिना आडंबर के नामस्मरण-नामस्मरण है । भजन के लिये तो होंठ हिलाने ही पड़ते हैं, किन्तु दिखावे के लिए भजन करना एकदम उनके मतानुसार गलत है । ईश्वरप्राप्ति के लिए प्रेम और नामस्मरण को परमावश्यक माना गया है । वेद-शास्त्रों को निरर्थक मानकर वे ज्ञानी उसी को कहेंगे जो 'ढाई आखर' पढ़ा है,

'पोथी पढ़ि-पढ़ि जग मुआ, पंडित भया न कोइ ।
ढाई आखर प्रेम का, पढ़ै सो पंडित होइ ।।'

दूसरी ओर वे पुस्तकीय ज्ञान का विरोध कर सत्संग को महत्व देते हैं ।

१०. विरह की मार्मिक उक्तियाँ - संत काव्य में श्रृंगार तथा शांत रस का अधिक चित्रण हुआ है । प्रणय की अवस्थाओं में संयोग तथा वियोग का वर्णन मिलता है । जैसे -

'बिरहिन ऊभी पंथ, सिर पंथी बूझै धाइ ।
एक शब्द कहि पीव का, कब रे मिलेंगे आइ ।।'

ईश्वर-प्रियतम की प्रतीक्षा में वह संत-कबिर न जाने कब से खड़ा है । वह अपना संदेश काग आदि के द्वारा भी पहुँचाता है । यहाँ बिरहिन स्वयं संत कवि है । संयोग पक्ष में प्रिय की मिलनातुरता, प्रथम समागम, नवोढा की लज्जा, झूला झूलना आदि का हृदयाकर्षक वर्णन यत्र-तत्र प्राप्त होता है । नामदेव, कबीर, नानक, रविदास, मलिक मुहम्मद जायसी आदि कवियों के काव्य में उक्त विषयों का वर्णन मिलता है ।

११. नारी के प्रति दृष्टिकोण (माया का वर्णन) - माया का अर्थ सत्य से हटकर कुमार्ग पर ले जाने वाली तथा कनककामिनी से है । वैसे आकर्षण व मोह में आबद्ध करने वाली ये सब वस्तुएँ हैं । यहाँ संत कवियों ने नारी को माया का प्रतीक माना है और उससे सावधान रहने को कहा है, क्योंकि वह आग, कनक जैसी होती है, जिससे भस्म होना, नशा आना सहज है । कबीर का तो यहाँ तक कहना है कि

'नारी की झाँई परत, अंधा होत भुजंग ।
कबिरा तिनकी कौन गति, (जो) नित नारी के संग ।।'

भुजंग को अंधा बना देने वाली नारी से वे अछूते रहकर साधना करना चाहते हैं, क्योंकि उनके मतानुसार नारी बाधा है । एक ओर इन्होंने नारी की निंदा की है, तो दूसरी ओर सती और पवित्रता के आदर्श की मुक्त कंठ से प्रशंसा की है

'पवित्रता मैली भली, काली कुचित, कुरूप ।'

---

६. हिन्दी साहित्य का समग्र इतिहास - डा. रामशचन्द्र शर्मा, प्र. सं. १९९०, पृ० ११३ ।

ब्रह्मा, विष्णु, महेश भी माया के वशीभूत है, जबकि माया भगवान को मिलने के मार्ग मे गड़ा है । यह माया महाठगिनी है, जो मधुर वानी बोलकर फँसाती है । अतः उससे सावधानी बरतनी चाहिए ।

१२. सूफी मत का प्रभाव - संत काव्यों पर सूफी मत का प्रभाव पड़ा है । इस विदेशी काव्य शैली का संतों ने कुछ हद तक अनुकरण किया है । ईश्वर के दास (बंदे) के रूप में स्वयं संत अपने को मानते हैं । यह प्रवृत्ति सूफी साहित्य से कुछ प्रमाण में आयी है । खुदा का एकीकरण का तात्पर्य सबका मालिक एक है । यह मत भी सूफी मत है । इसका भी संतों पर प्रभाव पड़ा है । प्रेमभाव की प्रधानता सूफी साहित्य की एक खास विशेषता है । उसका अंतर्भाव संतों के काव्यों में हुआ है । पत्नी=आत्मा, पति=परमात्मा आदि मानने की प्रवृत्ति सूफियों से आयी है । इस प्रकार सूफी मत का प्रभाव संत काव्यों में दृष्टिगोचर होता है ।

'मुहम्मद चिनगी प्रेम के, सुनि महि गगन डेराइ ।
धनि विरही औधनि हिया, जहँ अस अगिनि समाइ ।।'

कवि मंझन के नारी सौंदर्य में परमात्मशक्ति झलकती है

'एही रूप बुत अहै छिपाना ।
एही रूप सब सृष्टि समाना ।।
एही रूप सकती औ सीऊ ।
एही रूप त्रिभुवन कर जीऊ ।।'[१०]

इस प्रकार समस्त निर्गुण काव्य पर सूफी मत का पर्याप्त प्रभाव पड़ा है । वैसे-कबीरदास, गुरुनानक, रैदास, दादूदयाल, सुन्दरदास, गरीबदास, यारीसाहब, मलूकदास, दरिया साहब (बिहारवाले), धरनीदास आदि की वाणी में सूफी शब्दावली देखी जा सकती है (निर्गुण काव्य पर सूफी प्रभाव - डा. रामपति राय शर्मा १९७७, पृ. २१७-२२९), जिसे प्रस्तुत करने का प्रयास डा. रामपति राय शर्मा ने किया है ।

१३. भाषा शैली - भक्तिकाल के इस धारा में गेयमुक्तक शैली (लोकगीत) का प्रयोग हुआ है । इसमें गीतिकाव्य के सभी तत्वों का प्रयोग दिखाई पड़ता हैं । जैसे - भावात्मकता, संगीतात्मकता, सूक्ष्मता, वैयक्तिकता, कोमलता आदि । इस समय के काव्यों में दोहा, चौपाई, साखी आदि छंदों का प्रयोग हुआ है । 'मसि कागद छूओ नहिं, कलम गहीं नहिं हाथ' कहने वाले अपढ़ कवियों ने भी छन्दों का अच्छा प्रयोग किया है । बोलचाल की भाषा को अपनाकर इन्होंने उसे अभिव्यक्ति का माध्यम माना । खिचड़ी या सधुक्कड़ी भाषा में अपनी अपनी रचनाएँ प्रस्तुत की हैं । देश की विभिन्न बोली, भाषाओं के शब्दों के प्रयोग कर उसमें सामान्यीकरण किया है, जिससे हरेक को वे काव्यपंक्तियाँ अपनी ही लगती हैं । अंत में कहा जाएगा कि संतकाव्य सामाजिक, धार्मिक, राजनैतिक, साहित्यिक दृष्टि से महत्वपूर्ण बन पड़ा है । निर्गुण

---

१०. हिन्दी साहित्य का समीक्षात्मक इतिहास - डा० कृष्णलाल हंस, प्र. सं. १९७४ पृ० १३५ ।

संत साहित्य की विषयगत, भावगत एवं शैलीगत विशेषताओं का सविस्तार वर्णन डा. कृष्णालाल हंस तथा डा. रमेशचन्द्र शर्मा ने किया है ।[११]

ज्ञानमार्गी शाखा की विशेषताएँ / प्रवृत्तियाँ
(ज्ञानाश्रयी काव्य की प्रवृत्तियाँ)

इस शाखा के कवियों द्वारा जनजीवन के सत्य की अभिव्यक्ति हुई है । निजी अनुभूतियों पर कवियों का विश्वास है । निर्गुण ईश्वर में विश्वास रखकर उन्होंने उसका गुण-गान किया है । उन्होंने अवतारवाद, जाति पाँति, आडंबर आदि का वे विरोध किया है । ऐसे धार्मिक समन्वयवादी संत साहित्य की सामान्य विशेषताएं निम्नलिखित हैं ।

१. **निर्गुण ब्रह्म की उपासना :** यह निर्गुण धारा के ज्ञानाश्रयी शाखा की प्रधान विशेषता है, जिसमें निर्गुण ब्रह्म को महत्व दिया गया है । इस शाखा के कवियों के (निर्गुणवादी) अनुसार ईश्वर निर्गुण - निराकार - निर्विकार - वर्णहीन है । ऐसे भगवान की उपासना वे करना चाहते हैं । भारत ब्रह्मज्ञान और योग साधना में अग्रसर है । योगसाधना के माध्यम से ब्रह्म, जो निर्गुण है उसकी वे उपासना करते हैं । योग की क्रिया का साधना में महत्व है । मन को एकाग्रकर ब्रह्म में योग द्वारा लीन होने का प्रबंध इनमें है । इसको वे मुक्ति का उपाय मानते हैं । सगुण ब्रह्म की उपासना वे चाहते नहीं, क्योंकि ईश्वर का साकार रूप इन्हें कतई पसंद नहीं है । रविदास के शब्दों में 'प्रभुजी, तुम चंदन हम पानी ।' तथा कबीर ने भी अपने दोहे में यों कहा है -

'राम नाम की लूट है, लूटि सके तो लूट ।
अंत समय पछताओगे, प्राण जायेंगे छूट ।।'

जबकि मलूकदास ने यों कहा है

अजगर करे न चाकरी, पंछी करै न काम ।
दास मलूका कह गए, सबके दाता राम ।।

'तोल न मोल माप कछु नाही, गिनै ज्ञान नहिं होई ।[१२]
ना सो भारी, ना सो हलुका, ताकी पारीख लखै न कोई ।।'

२. **बहुदेवोपासना और मूर्तिपूजा का खंडन** - यह ज्ञानमार्गी काव्य की द्वितीय विशेषता है । इस शाखा के कवियों (संत) ने बहुदेवोपासना का विरोध किया है, क्योंकि इन्हें बहुदेवों के स्थान पर एक देवता का विश्वास है और वह देवता निर्गुण है । अर्थात् ये एकेश्वरवादी हैं। अवतारवाद इन्हें बिल्कुल भाता नहीं । दूसरी ओर इन संतों को मूर्तिपूजा नापसंद है ।

---

११. अ. 'हिन्दी साहित्य का समीक्षात्मक इतिहास' डा० कृष्णलाल हंस, प्र. सं. १९७४ पृ.१२३-१२५।

आ. 'हिन्दी साहित्य का समग्र इतिहास' डा० रमेशचन्द्र शर्मा, प्र. सं. १९९० पृ.१२२-१२३ ।

१२. हिन्दी साहित्य का समीक्षात्मक इतिहास डा० कृष्णलाल हंस, प्र. सं. १९७४ पृ० ६५ ।

मूर्तिपूजक इस समाज में एक नहीं, अनेक हैं, जिन्हें इन्होंने देखा परखा और उसका विरोध किया । मूर्तिपूजा का विरोध करने में इन्हें लाख मुसीबतों से जूझना पड़ा । उनका खंडन करते हुए कबीर यह कहते हैं

'पाहन पूजे हरि मिले, तो मैं पूजूं पहार ।
ताते ये चक्की भली, पीस खाय संसार ।।'

इस प्रकार सेनापति, गुरुनानक, पीपा आदि कवियों ने भी अवसरवाद का विरोध करते हुए बहुत कुछ लिखा है । तत्कालीन आडंबर का वे विरोध करते गये हैं ।

३. **साहित्यिक रचनाओं का अभाव** - इस शाखा के कवियों द्वारा केवल फुटकर दोहे या पदों की रचना हुई है । इसलिए कहा जाएगा कि साहित्यिक रचनाओं की सृष्टि पूर्णरूपेण कहीं भी उपलब्ध नहीं होती है । एकाध मुक्तक काव्य की उपलब्धि होती है, उसमें भी त्रुटियाँ ज्ञात होती है। इनकी भाषा शैली अधिकतर अव्यवस्थित और ऊटपटांग लगती है । वैसे कवियों अक्खड़ और फक्कड़ स्वभाव के होने के कारण लापरवाही से ढेढा मेढ़ा साहित्य लिखा है । वैसे इनकी भाषा खिचड़ीनुमा रही है, जो मंजी हुई नहीं थी । ये संत कवि (वैष्णव) सुनी सुनायी बातों को तुकबंदियों में बांधने का कार्य करते रहे हैं । इसलिये इनके काव्यों में साफ सुथरापन दिखाई नहीं देता है । वैसे इनमें अधिकतर कवि निरक्षर थे । अतः रस, अलंकार, छंदों का अभाव इनके काव्यों में दिखाई देता है । ये उपदेशक पहले थे, बाद में कवि । इनके उपदेश के कारण सत्संग, भजन, कीर्तन आदि बनाये जा सकते हैं । व्याकरण की दृष्टि से विशुद्धता का अभाव रहने के कारण इनकी साहित्यिक रचनाएँ कम मात्रा में प्राप्त होती हैं ।

४. **अंतःसाधना पर बल** - अंतःसाधना से तात्पर्य वैयक्तिक साधना है । इस साधना के दो रूप बनाये जाते हैं कर्मयोग और हठयोग । कर्मयोग में संसार के माया-मोह से अलिप्त रहना है, उसमें करनी और करनी को बराबर माना गया है । दूसरे में नेती-धोती, कठिन आसन और मुद्रा आदि का समावेश होता है । इन कठिन साधनों में शरीर का साधन के रूप में प्रयोग किया जाता है । इसमें वैयक्तिक साधन से ईश ज्ञान प्राप्ति का हेतु होता है । इस साधना से तन और मन की शुद्धता सह ब्रह्म की प्राप्ति का उद्देश्य रहता है ।

इन संतों ने नाथयोगियों की हठयोग साधना को अपनाया है । मात्र शरीर में तीन नाड़ियाँ प्रमुख हैं, उन्हीं का रूपक देखिये

'झीनी झीनी बीनी चुनरिया ।
इला पिंगला ताना भरती, सुख मन तार से बीनी चदरिया ।।'

५. **सद्गुरु की महिमा** :- जैसी भक्तिकाल की प्रधान विशेषता रही है, वैसी इस शाखा की भी है । गुरु की महत्ता पर इस शाखा के भी कवियों ने जोर दिया है और बहुत कुछ लेखन किया है । इन्होंने शिष्य गुरु का संबंध दर्शाते हुए बहुत कुछ लिखा है । गुरु के आदर्श को लेकर सभी कवियों ने लिखने का प्रयास किया है । कवि पीपा, सेना, रोहिदास, नानक आदि संतों ने सतगुरु की प्रधानता पर बल देकर उसका गुणगान किया है । कबीर ने तो गोविन्द से गुरु को श्रेष्ठ बताया है

'कबीर ते नर अंध हैं, गुरु को कहते और ।
हरि रूठे गुरु ठौर है, गुरु रूठे नहिं ठौर ।।'
''गुरु गोविन्द दोऊ खड़े, काके लागूँ पाय ।
बलिहारी गुरु आपने, जो गोविन्द दियो बताय ।।''

गुरु-शिष्य परंपरा अति पुरानी है, जिसकी महत्ता अगाध है । 'बिना गुरु के ज्ञान कहाँ?' तत्कालीन गढ़े दोहे आज भी समर्पक प्रतीत होते हैं । इसलिए वे बोधप्रद होते हैं और पाठ्यक्रमिक पुस्तकों में रखे जाते हैं, जिससे गुरु-शिष्य का कैसे संबंध रहना चाहिए का ज्ञान होता है ।

६. **जाति-पांति के बंधन को न मानना** - यह इस ज्ञानाश्रयी शाखा की अन्य महत्वपूर्ण प्रवृत्ति है । मध्यकाल की सामाजिक कुप्रवृत्तियों को पग-पग पर निहारकर इस काल के विशेषकर इस शाखा के कवियों ने उस पर प्रहार करने का जोरदार प्रयत्न किया है । कभी गालियाँ दी तो कभी खिल्ली उड़ाई है । भाषा के माध्यम से जैसा चाहे उसका प्रयोग कर जाति-पांति को दूर करने का प्रयास किया है । लेखन में व्याकरण की ऐसी-तैसी करने वाले इस शाखा के संतों ने छुआ-छूत पर प्रहार कर मानवता पर बल दिया है । ''सभी मनुष्य जाति एक है'' की भावना का इन्होंने प्रचार व प्रसार किया है । एकता पर जोर देकर ज्ञान के महत्त्व को समझाते हुए कबीर ने यों कहा है

''जाति न पूछौ साधु की, पूछ लीजिए ज्ञान ।
मोल करो तलवार की, पड़ा रहने दो म्यान ।।''

७. **रहस्यवाद की प्रवृत्ति** - ज्ञानमार्गी कवि-संतों की यह एक खासियत रही है कि वे 'कण-कण में भगवान' को देखते हैं । वे उसकी सत्ता दसों-दिशाओं में पाते हैं । आत्मा (स्वयं) परमात्मा (ईश) के संबंध में बार-बार कहकर खासकर ईश्वर के रहस्य को उद्घाटित करने का वे प्रयत्न करते हैं । 'मैं तो राम की बहुरिया' कहने वाला कबीर कवि अपने को पत्नी मानकर पति उस अमर को दर्शाता है । अर्थात् आत्मा पत्नी और परमात्मा पति के रूप में मानने की प्रथा उनमें रही है । काव्यों में परमात्मा रूपी पति का रूप श्रेष्ठ दिखाया गया है । एक जगह कबीर ने अपने को उस परमब्रह्म राम का कुत्ता माना है

''कबीर कुत्ता राम का, मोतिया मेरा नाउँ ।
गले राम की जेवड़ी, जीत खींचे तित जाउँ ।।''

उच्च विषयों का भी अर्थात् अलौकिक तत्वों का भी इन कवियों के काव्य में दर्शन होता है । आलोक की दृष्टि से वह एक आभास रहा है । रहस्यवाद का एक अनूठा दोहा पढ़िए-

'लाली मेरे लाल की, जित देखूँ तित लाल ।
लाली देखन मैं गयी, मैं भी हो गई लाल ।।'

८. **आडंबर, अंधश्रद्धा तथा रूढ़िवाद का विरोध** - सभी ज्ञान मार्गी कवियों ने इस प्रवृत्ति के अनुरूप लिखा और कार्य भी किया है । इसलिए वे एक ओर सुधारवादी कहे जाते हैं, तो दूसरी ओर विद्रोही ठाकर विद्रोही बनाए जाते हैं, फिर भी वे समाज को सुधारने का प्रयत्न

करते हैं । भले ही वह सुधरे या ना सुधरे । पंडितों तथा मुल्लाओं की निंदा इन्होंने की है। आडंबर ढोंग ढकोसले पर वार कर मुख में राम बगल में छूरी वाली प्रवृत्ति पर घात किया है

मिथ्याचार को कदम कदम पर देखकर आचरण की शुद्धता पर जोर देते हुए बहुत ही लिखा है । अंधश्रद्धा का इस समय जोर रहना स्वाभाविक है, क्योंकि इस समय का समाज लगभग सभी अपढ़ था । अतः वे अंधविश्वासों से जीवन बिताते थे । उन्हें सजग करने का प्रयत्न तत्कालीन संतों ने किया है। रूढ़िग्रस्त समाज हर धर्म में था और इसलिए धर्म के अनुसार आचरण करने लगा था । ऐसी स्थिति में रूढ़ि-परंपराओं का विरोध करना अपने आप में कठिन कार्य था इस अर्थ में वे 'समाज सुधारक' कहे जाते हैं ।

मूँड़ मुड़ाये हरि मिलैं, तौ सब कोइ लेय मुड़ाय ।
बार बार के मूँड़ते, भेड़ बब वैकुण्ठ जाय ।। - कबीर

'हिन्दू पूजै देहरा, मुसलमान मसीह ।।
नामा नहीं सेविये, जहाँ देहरा न मसीह ।।[13] - नामदेव

६. **माया से सावधान** - ज्ञानाश्रयी काव्यों के रचयिताओं ने माया से सावधान रहने का उपदेश दिया है । उनके अनुसार माया भक्ति के पथ में सबसे बड़ी बाधा है । यह माया महाठगिनी है । इसने अपनी मधुर बानी से सबको फंसा लिया है । ब्रह्मा, विष्णु, महेश को भी अपने वशीभूत कर लिया है । ऐसी माया का वर्णन कबीर ने इस पद में किया है-

'केशव में कमला ह्वै बैठी, तीरथ में भई पानी ।
पंडा के मूरत ह्वै बैठी, राजा के घर रानी ।।
योगी के योगिनि ह्वै बैठी, राजा के घर रानी ।
काहू के हीरा ह्वै बैठी, काहू के कौड़ी कानी ।।
भक्तन के भक्तिन ह्वै बैठी, ब्रह्मा के ब्रह्मानी ।
कहै कबीर सुनो हो संतो, यह सब अकथ कहानी ।।[14]

कबीर जैसे इस शाखा के अनेक कवियों ने इस माया को सत् और असत् से परे माना है ।

निष्कर्ष के रूप में यह कहना उचित है कि संत काव्य सामाजिक, धार्मिक एवं साहित्यिक दृष्टि से महत्वपूर्ण बन पड़ा है । संतों की काव्य वाणी उस समय की अनैतिकता, आडम्बरादि को दूर करने में सहायक सिद्ध हुई है । ज्ञानमार्गी कवियों द्वारा किया गया उपदेश हिन्दू इस्लामों के लिए बहुत ही उपयोगी रहा है, क्योंकि इन कवियों ने बाह्याडंबरों पर करारा व्यंग्य कर समाज को सुधारा है । सामाजिक एवं आध्यात्मिक ज्ञान के कारण ये कवि प्रसिद्ध हुए हैं ।

---

१३. हिन्दी साहित्य : युग और प्रवृत्तियाँ डा० शिवकुमार शर्मा, पंचम सं. १९७० पृ. १२३ ।
१४. कविता की परम्परा सं० रंगनाथ तिवारी, प्र. सं. १९६५ पृ. ५ ।

प्रेम मार्गी शाखा की विशेषताएं / प्रवृत्तियाँ।
(सूफी काव्य की प्रवृत्तियाँ)

हिन्दी का सूफी साहित्य फारस (इरान) में विकसित सूफी मत की साहित्यिक अभिव्यंजना है । इसका दृष्टिकोण सर्वथा भारतीय ज्ञात होता है । सूफी साधना के चार अंग बताये जाते हैं - १. शरीयत, २. तरीकत, ३. मारिफत, ४. हकीकत ।

१. **शरीयत**-इसमें साधक ईश्वर की आज्ञा में चलने की प्रतिज्ञा करता है।

२. **तरीकत** - इस अंग में सांसारिक कर्मों को त्याग कर वह सदैव ईश्वर का ध्यान करता रहता है ।

३. **मारिफत** - इस सोपान में साधक प्रभु से दर्शन की याचना करते रहता है ।

४. **हकीकत** - सूफी साधना के इस अंतिम सीढ़ी में वह ब्रह्म से मिलता है (ब्रह्म जीव का संयोग) । उक्त सूफी साधना के चार विचारधाराओं के आधार पर सूफी मत के चार संप्रदाय निकल पड़े हैं - १. चिश्ती संप्रदाय, २. सुहरावर्दी संप्रदाय, ३. कादरी संप्रदाय, ४. नक्श बंदी संप्रदाय।

१. **चिश्ती सम्प्रदाय** - इसे मुगल काल में राज्याश्रय प्राप्त हुआ था इसके भारत में सर्वाधिक अनुयायी रहे हैं ।

२. **सुहरावर्दी सम्प्रदाय** - इस संप्रदाय को राजा और प्रजा सम्मान की दृष्टि से देखते थे।

३. **कादरी सम्प्रदाय** - इसमें उत्कट प्रेम की प्रधानता है ।

४. **नक्श बंदी सम्प्रदाय** - इस अंतिम संप्रदाय का दृष्टिकोण बुद्धिवादी था ।[१५] ये संप्रदाय ग्यारहवीं शताब्दी से सोलहवीं शताब्दी तक चलते रहे हैं। भक्तिकाल में आने वाले निर्गुण शाखा के सूफी काव्य की या प्रेम मार्गी काव्य साहित्य की निम्नांकित विशेषताएँ हैं -

१. **प्रबंध काव्य की योजना** - १२वीं शती के सूफी साधकों ने भारत में आकर सूफी मत का प्रचार किया । प्रचार के लिए उन्होंने प्रेमगाथाओं की रचनाएँ की हैं । सूफियों ने लौकिक प्रेम कहानियों के माध्यम से अलौकिक प्रेम की अभिव्यंजना की है । ये काव्य-कहानियाँ प्रबंध काव्य की कोटि में आती है, जो भारतीय महाकाव्य की शैली में लिखे गए हैं । इन कहानियों में प्रायः समुद्र, तूफान, वन, मकान, वर्गीचा आदि का वर्णन आया है । इस शाखा के कवियों ने कथात्मक काव्य के प्रारंभ में मंगलाचरण, ईश सत्ता, हजरत मोहम्मद की प्रशंसा का वर्णन किया है । इनके प्रबंध काव्य में नायक-नायिका के देश, काल, आचार आदि का उल्लेख एवं कथा में गति लाने के लिए नायक नायिका के साथ खलनायक-खलनायिका की भी सृष्टि हुई है । कथा के अंत में प्रेमी-प्रेमिका का मिलन होता है और अंत में नायक मारा या मर जाताहै। नायिका या तो सती हो जाती है या वैसे ही जीवन बिताती है । उदाहरण के लिए 'पदमावत' प्रबंध काव्य में पदमावती तथा रत्नसेन का कुछ ऐसा ही वर्णन है । सूफियों के प्रबंध काव्य कभी सुखांत कभी दुखांत होते हैं, जिनमें दार्शनिक दृष्टि निहित होती है । श्यामसुन्दर कपूर के 'हिन्दी साहित्य का इतिहास' में सूफी प्रेमाख्यानों की तालिका दी गई है ।

---

१५. हिन्दी साहित्य का समग्र इतिहास - डा० रमेशचन्द्र शर्मा, प्र. सं. १९९० पृ. १३३-१३४ ।

२. **प्रेमभाव और श्रृंगार रस की व्यंजना** - "प्रेम ही धर्म और कर्म है ।" यह विचार सूफी मत ने दिया है । सूफी काव्य में व्यक्त प्रेम देशी विदेशी दोनों शैली का नजर आता है । फारसी प्रणाली के अनुसार नायक का नायिका की प्राप्ति के लिये बेचैन होना और उसे ईश्वर या परमात्मा का रूप मानना आदि का वर्णन इनके काव्य में प्राप्त होता है । यहाँ नायक को आत्मा मानकर नायिका को परमात्मा माना गया है, जबकि देशी प्रणाली के अनुसार पत्नी को आत्मा और पति को परमात्मा माना जाता है । जायसी के 'पद्मावत' में पद्मावती के सतीत्व एवं उसके उत्कृष्ट पति प्रेम दर्शाया गया है, जिसमें भारतीयता की झलक दिखाई देती है ।

सूफियों का मुख्य विषय 'प्रेम' रहा है । इस प्रेम के वर्णन में उन्होंने वियोग पक्ष को अधिक महत्व दिया है, जिसका स्थान-स्थान पर वर्णन मिलता है, क्योंकि वे विरह को जीवन मानते हैं, और मिलन को अंत । इस दृष्टि से कवि मंझन का विरह वर्णन अनूठा बन पड़ा है -

"कोटि माहि विरला जग कोई ।
जाहि मरीर विरह दुःख होई ।।"[१६]

विरह में बारह मासे का वर्णन मिलता है । संयोग अवस्था में भोगविलास का वर्णन प्राप्त होता है, जिससे आनंदानुभूति होती है । संयोग और वियोगावस्था का वर्णन श्रृंगार रस के अंतर्गत होता है । जो भी हो इस प्रेम मार्गी काव्य का प्रधान रस श्रृंगार रहा है । इसके अतिरिक्त वीर, करुण, रौद्र, शांत तथा वीभत्स रस का समावेश भी इनके काव्यों में हुआ है ।

३. **पात्रों का चरित्र चित्रण** - सूफियों ने प्रेमगाथाओं में पात्रों की योजना बखूबी की है। उनके ग्रंथों में नायक-नायिकाओं के जीवनपर प्रकाश डाला है । नायक को विभिन्न कठिनाइयों से जूझते निकलना पड़ता है और अंत में सफलता मिलती है । वह आदर्श बन जाता है । कहीं-कहीं ऐतिहासिक पात्रों का उल्लेख मिलता है, तो कहीं-कहीं काल्पनिक पात्रों की सृष्टि, जैसे 'देवता' आदि में संस्कृत साहित्य के समान नायक सामंती वातावरण का दिखता है । पराक्रमी, शूरवीर पात्रों के साथ गौण पात्र भी कथाओं में आये हैं । अनेक क्षेत्र के पात्रों की सृष्टि इनके काव्य में हुई है, फिर भी चरित्र-चित्रण में वैविध्य नहीं है । इस प्रकार सूफी ग्रंथों में अनेक पात्रों को गढ़ने का तत्कालीन कवि-रचयिताओं ने प्रयास किया है ।

४. **लोकपक्ष और हिन्दू संस्कृति का वर्णन** - सूफी काव्यों में अंधविश्वास, जादू-टोना, लोकोत्सव, लोक व्यवहार आदि विषयों का उल्लेख हुआ है । हिन्दू घरानों की प्रेम कहानियों का भी वर्णन यत्र-तत्र दिखाई पड़ता है । हिन्दू पात्रों में हिन्दू आदर्शों की प्रतिष्ठा की गई है । हिन्दू-संस्कृति के अनुसार कथाएं लिखने का भी प्रयत्न हुआ है । इस शाखा के कवियों को पुराणों का विशेष ज्ञान न होने के कारण इनके साहित्य में भद्दापन आ गया है । ये कुछ का कुछ लिख बैठे हैं । उदाहरणार्थ जायसी ने नारद को शैतान के रूप में, चंद्रमा को स्त्री के रूप में, और रत्नसेन को रावण के रूप में बतलाया है । डा. हंस ने लोकपक्ष और हिन्दू संस्कृति का वर्णन इस प्रकार किया है

---

१६. हिन्दी साहित्य का समीक्षात्मक इतिहास डॉ० कृष्णलाल हंस, १९९४ पृ. १३५ ।

''सूफियों के सिद्धांत और धर्म-भावना में भारतीय हिन्दू धर्म और परिष्कृत इस्लाम धर्म का एक ऐसा समन्वित स्वरूप दिखाई देता है, जो दोनों धर्मों के अनुयायियों को मान्य है। इनकी इसी विशेषता के कारण सूफी प्रेममार्गी काव्य हिन्दू मुस्लिम ऐक्य में भी एक बहुत बड़ी सीमा तक सहायक हुआ।''[१७] इस प्रकार अनेक विषयों पर प्रकाश डालने का प्रयत्न इन प्रेममार्गी कवियों द्वारा हुआ है।

५. **खंडनात्मक प्रवृत्ति का अभाव-** सूफी मत इस्लाम से पहले आविर्भूत हुआ था। ज्ञान मार्गियों ने खंडनात्मक साहित्य लिखा है, जबकि प्रेममार्गियों ने केवल मंडनात्मक। ज्ञानमार्गियों के विरोध में मानो इन्होंने लिखा है। सामाजिक स्थिति के विरोध में कुछ न कहते हुये उसको स्वीकार किया है। मंडनात्मक प्रवृत्ति में इन्होंने केवल हिन्दू, मुसलमानों की विशेषताओं का वर्णन किया है, उसके विरोध में कुछ भी नहीं कहा है। इन्होंने खंडनात्मकता में कुछ लिखा नहीं, क्योंकि उसमें हिन्दू-इस्लाम चिढ़ते हैं और असफलता मिलती है। अतः इन्होंने केवल मंडन की प्रवृत्ति को स्वीकारकर 'जैसे थे' की सामाजिक आदि परिस्थितियों का वर्णन किया है।

६. **नारी चित्रांकन -** इनके काव्य में प्रेम का प्रमुख स्थान नारी है। नारी परमात्मा का प्रतीक बनी थी, जो लौकिक जीवन की भोग्य वस्तु न रही। वह एक आदर्श को पा गई थी। इनके काव्य में 'परकीया' तथा 'स्वकीया' का भी चित्रण मिलता है। इन्होंने नारी को माया न मानकर शैतान को माया माना है, जो माया साधना के मार्ग का एक रोड़ा बताया जाता है। गुरु की कृपा से इस माया के पंजे से इनकी छुट्टी होती है। ज्ञानाश्रयी कामिनी-माया है, तो प्रेमाश्रयी, शैतान माया है। ''नारी है नर की खान।'' ऐसी नारी का महत्व इस प्रेमाश्रयी में होते हुए कहीं-कहीं उसे हाड़-मांस की न दर्शाकर अलौकिक तत्व की बताई गई है। अर्थात् एक ओर लौकिक तो दूसरी ओर अलौकिक जगत की नारी का चित्रण इनके काव्य में चित्रित है।

७. **प्रतीक विधान -** सूफी कवियों ने लौकिक प्रेम कहानियों द्वारा अलौकिक प्रेम का वर्णन किया है। अव्यक्त सत्ता का आभास देते हुए रहस्यात्मकता के अभिव्यक्ति के लिए उन्होंने प्रतीकों का प्रयोग किया है। सांकेतिक विधान-पद्धति का अवलंब लेकर विविध सांकेतिक शब्दों का उपयोग किया है। उदाहरणार्थ - उस्मान कवि ने-'चित्रावली' में नायक-नायिका, वस्तुओं, स्थलों के नाम, सांकेतिक दिए हैं। नायक का नाम ''सुजान'' है, नायिका के निवासस्थान का नाम ''रूपनगर'' है और स्थल का नाम ''भोगपुर'' है। कवि कासिमशाह की रचना में भी नायक का नाम ''हंस'' है और नायिका का नाम ''जवाहर'' है। अतः कहा जाएगा कि प्रतीक का उन दिनों प्रचुर मात्रा में प्रयोग किया जाता था।

८. **भाषा-शैली -** सूफी प्रेमाख्यानों की भाषा प्रायः अवधी रही है। कवि उस्मान एवम् नसीर पर भोजपुरी का प्रभाव है। नूर मुहम्मद ने कहीं-कहीं ब्रजभाषा का प्रयोग किया है। सूफ़ी काव्य में प्रबंध शैली के अतिरिक्त मुक्तक शैली में भी दोहा, चौपाई, कुंडलियाँ आदि छंदों में रचनाएँ हुई हैं। अवधी के तद्भव शब्दों का अधिक प्रयोग हुआ है। कहीं-कहीं भोजपुरी,

---

१७. हिन्दी साहित्य का समीक्षात्मक इतिहास - डा० कृष्णलाल हंस, १९७४ पृ. १४९।

व्रजभाषा सहित अरबी फारसी के शब्द प्रयुक्त हुए हैं । अलंकार योजना भी सराहनीय बन पड़ी है । उपमा, उत्प्रेक्षा, अनुप्रास जैसे अलंकार उत्तम बने हैं । सूफी काव्य में एक ओर लोकरंजन है, वहाँ दूसरी ओर लोकमंगल का भी विधान है । सूफियों ने धर्म, संप्रदाय, वर्गभेदभाव को हटाने का प्रयत्न कर प्रेम के सर्वश्रेष्ट स्वरूप का प्रतिपादन किया है ।

संक्षेप में इस सूफी काव्य की विशेषता यह है कि इसमें प्रबंध काव्य रचे गए हैं । शृंगार रस की प्रधानता इस साहित्य की द्वितीय विशेषता रही है। विविध पात्रों की निर्मिति भी इस शाखा के कवियों ने की है । सूफियों का मंडनात्मक साहित्य है । उन्होंने हिन्दू संस्कृति का अड़म-धड़म वर्णन किया है । सूफी काव्यांतर्गत नारी परमात्मा का प्रतीक है, वह अलौकिक तत्व की बताई गई है । इनकी कहानियों में प्रतीक विधान का भी प्रयोग हुआ है ।

संत एवं सूफी काव्य प्रवृत्तियों की तुलना

असमानताएँ

	संतकाव्य (ज्ञानमार्गी)		सूफीकाव्य (प्रेममार्गी)
१.	संतों ने साधना पक्ष में ज्ञान को महत्व दिया है ।	१.	सूफियों ने साधना पक्ष में प्रेम को महत्व दिया है ।
२.	इसमें 'माया' का स्थान होता है ।	२.	इसमें 'शैतान' का स्थान होता है ।
३.	संतों ने धार्मिक एकता का प्रयत्न किया है।	३.	सूफियों ने सांस्कृतिक एकता का प्रयत्न किया है ।
४.	इसमें ईश्वर की 'प्रियतम' के रूप में कल्पना की जाती है ।	४.	इसमें ईश्वर की 'प्रियतमा' के रूप में कल्पना की जाती है ।
५.	आत्मा को स्त्री और परमात्मा को पुरुष माना गया है ।[१८]	५.	आत्मा को पुरुष और परमात्मा को स्त्री माना गया है ।
६.	ये भारतीय वेदान्त से प्रभावित हैं।	६.	ये फारस से प्रभावित हैं ।
७.	इसकी प्रेम पद्धति विशुद्ध रूप से भारतीय है ।	७.	सूफियों का प्रेरणा स्रोत फारस की मसनवी पद्धति है ।
८.	संतों ने खण्डनात्मक दृष्टिकोण अपनाया है ।	८.	सूफियों ने मंडनात्मक दृष्टिकोण अपनाया है।
९.	इन पर सिद्धों-नाथों का अधिक प्रभाव है।	९.	इन पर सिद्धों नाथों का कम प्रभाव है ।

---

१८. 'मैं बकरी मेरा राम भताऊ ।
रचि रचि ताकउँ करउँ सिगाऊ ।। नामदेव
हिन्दी एवं मराठी के वैष्णव साहित्य का तुलनात्मक अध्ययन डा० नरहरि चिंतामणि जोगलेकर, १९६८ पृ. ३७७ ।

१०. इन्होंने मुक्तक काव्यों की रचना की है।	१०. इन्होंने प्रबंध (कहीं-कहीं मुक्तक) काव्यों की रचना की है।
११. इनकी सधुक्कड़ी (खिचड़ी) भाषा रही है।	११. इनकी प्रायः लोकप्रचलित अवधी भाषा रही है।
१२. संतों का ईश्वर घट घट वासी है।	१२. सूफियों का रब प्रकृति के कण कण में है।
१३. इनमें ब्रह्म का हृदय में (वैयक्तिक) दर्शन की मान्यता है।	१३. इनमें ब्रह्म का प्रकृति में दर्शन की मान्यता है।
१४. इनमें (कुछ मात्रा में) अहं है।	१४. इनमें सरलता एवं विनम्रता है।
१५. इनके काव्यों में उलटवांसियों का प्रयोग है। (प्रतीकात्मकता)।	१५. इनके काव्यों में उलटवांसियों का प्रयोग कम है। (प्रतीकात्मकता)।

समानताएँ

१. इन दोनों काव्यों में ऊँच-नीच के भेदभाव की अमान्यता है।
२. इन दोनों ने गुरु को महत्त्व दिया है।
३. इनमें लौकिक एवं अलौकिक प्रेम का अत्यधिक महत्व है।[१९]
४. ये दोनों साधक हैं, इन पर हठयोग और अद्वैतवाद का प्रभाव है।[२०]
५. साधना पक्ष में माया या शैतान का रूप एक है, (साधना पथ में बाधा)।
६. ये दोनों रहस्यवादी (अव्यक्त सत्ता) हैं।[२१]
७. दोनों में विरह का उन्मुक्त गान है। सूफियों का विश्वव्यापी तो संतों का व्यक्तिगत है।
८. ये निर्गुण निराकार ईश्वर की भक्ति (उपासना) करते हैं।
९. इन दोनों के काव्यांतर्गत प्रतीकों का प्रयोग है। आदि।

---

१९. 'संतों के यहाँ प्रेम व्यक्तिगत साधना में व्यवहृत है, सूफियों में तो लौकिक प्रेम के द्वारा अलौकिक प्रेम की अभिव्यंजना है। सूफीमत में प्रेम मुख्य है और संतों में गौण।' हिन्दी साहित्य की प्रवृत्तियाँ - डॉ० जयकिशन प्रसाद खंडेलवाल, षष्ठ संस्करण पृ० १६७।

२०. डॉ० जयकिशन प्रसाद खंडेलवाल - 'हिन्दी साहित्य की प्रवृत्तियाँ' वाली पुस्तक के पृ० १६८ पर लिखते हैं 'संत केवल साधक हैं। कवि रूप तो गौण है, जबकि सूफी पहले कवि हैं बाद में साधक। सूफियों की साधना सहज और सरल है। सन्त काव्य में परिवर्तन एवं परिवर्धन हुआ, जबकि सूफी काव्यों में यह बात अपेक्षाकृत कम है।' उनका यह मत कुछ प्रमाण में सत्य हो सकता है, क्योंकि डॉ० शिवकुमार शर्मा का मत है 'सूफी साधक भी हैं और कवि भी।'

२१. आ० शुक्ल के शब्दों में "सूफियों का रहस्यवाद शुद्ध भावात्मक कोटि में आता है, जबकि संतों का रहस्यवाद साधनात्मक कोटि में, क्योंकि उसमें विविध-यौगिक प्रक्रियाओं का उल्लेख है।"
हिन्दी साहित्य का अभिनव इतिहास - प्रा० रणसुभे प्रा० भुनड़ा।